बुल्गारिया रिट्रीट (पैम्पोरोवो)
जुलाई ३, २००७

सन्देश संख्या १२१

भगवद्गीता के दो और सूत्र

१. अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कमसञ्ज्ञितः ।। (८ः३)
२. अधिभूतं क्षरो भावः पुरूषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहेदेहभृतां वर ।। (८ः४)

१. चैतन्य अनश्वर और परम है । सहजावस्था एकमात्र आध्यात्मिक अवस्था है । कर्म वही है जो प्रतिक्षण अस्तित्वमय सजगता उत्पन्न करता है और व्यक्ति में सतत् नवजीवन का संचार करता है ।

यह एक अत्यन्त गम्भीर सूत्र है । हम चित्तवृत्ति में भ्रामक विभाजन से उत्पन्न तुच्छ ''मैं'' को ही अनश्वर मानते हैं और फिर ''व्यक्तिगत आत्मा'', ''ईश्वर'', ''स्वर्ग'', ''नरक'', ''पुनर्जन्म'', ''निर्वाण'', ''मुक्ति'' की अवधारणाओं द्वारा इसे निरन्तरता और स्थायित्व प्रदान करते हैं । हम अपने संग्रह और त्याग, स्वीकार और अस्वीकार तथा वैज्ञानिक और आध्यात्मिक खोजों द्वारा इस ''मैं'' को वास्तविकता के रूप में प्रक्षेपित करते हैं । किन्तु ''मैं'' की समस्त गतिविधियाँ, चाहे वे किसी भी संज्ञा से संबोधित क्यों न हों, अन्ततोगत्वा बदनामी और बुराई, द्वन्द्व और शोक, दुःख और दर्द, कुण्ठा और निराशा तथा युद्ध और ध्वंस ही लाती है । चैतन्य, जो सहजावस्था में स्थित जीवन है, को उपलब्ध होने के लिए क्या ''मैं'' समाप्त हो सकता है?

सहजावस्था में यथार्थता के प्रति सजगता होती है न कि मान्यताओं एवं आरोपणों के प्रति । इसमें विचार विराम के साथ आगे बढ़ते हैं अर्थात् विचारों में निरंतरता नहीं होती । सहजावस्था स्मृति में उपलब्ध शुद्ध तथ्यात्मक पंजीकरणों तक ही स्वयं को सीमित रखती है, वह मानसिक पंजीकरणों की वासना से प्रदूषित नहीं होती ।

यह 'यू.जी.' की सहजावस्था नहीं है जिसमें वह 'आध्यात्मिक आतंकवादी' की भूमिका में स्वयं को आनन्दित पाता है तथा ''जे.के. झूठ है'' का गीत गाने के लिए अपनी मण्डली को प्रेरित करता है ।

सहजावस्था गुणातीत होती है अर्थात् वह पालन–पोषण के दौरान समाज और परिवेश द्वारा आरोपित संस्कारों एवं बाध्यकारी अनुबन्धनों के परे होती है । सहजावस्था समझदारी की ऊर्जा में होती है । अतः वह आसक्ति और मानसिक उपद्रवों का वरण नहीं करती । यह सहजावस्था ही एकमात्र आध्यात्मिक अवस्था है । विशि वेश–भूषा, उपाधि, लम्बी दाढ़ी, जटा आदि धारण कर तथा कई प्रकार के कठोर अभ्यासों को अपनाकर जिसे हम ''आध्यात्मिक जीवन'' मानते हैं, वस्तुतः वह आध्यात्मिक अवस्था नहीं है ।

कुछ बनने की अन्तहीन आसक्ति के द्वारा किये गये ''मैं'' के कम ही समस्त प्रकार के बन्धन और बोझ उत्पन्न करते हैं । यह कर्म नहीं है । यह तो द्वन्द्व, दुविधा और अराजकता है । यह अवधारणाओं के पुराने क्षेत्र में कैद होना है तथा परस्पर विपरीतों के गलियारे में भ्रांत होना है ।

अस्तित्वमय सजगता की शुद्धता में जागरूकतापूर्वक किया गया कर्म ही सम्यक् कर्म होता है । यह प्रत्येक अवसर पर हमेशा जीवन्त और नया होता है ।

२. अभिव्यक्त भौतिक संसार नश्वर है । जागरूकता ही दिव्यता है । जीवित शरीर में विभेदकारी ''मैं'' के सतत् समर्पण का यज्ञ हमेशा चलते रहना चाहिए ताकि जागरण के प्रति सजग रहा जा सके । वह शरीर वस्तुतः भाग्यशाली है जो इस दिव्य यज्ञ को उपलब्ध शरीर के समीप रहता है क्योंकि तब संवहन की प्रक्रिया द्वारा उस शरीर में भी यह यज्ञ घटित हो सकता है ।

।। जय यज्ञ ।।